

ग्लोबल वार्मिंग : ज़िम्मेदारी से भागता अमरीका

जे. अकलेचा

कुछ साल पहले पर्यावरण कार्यकर्ता प्रोफेसर वांगारी एम. मथाई को शांति का नोबेल पुरस्कार दिए जाने पर उसे पर्यावरण के प्रति समर्पण का 'सम्मान' निरूपित किया गया था। अब इस साल फिर यह प्रतिष्ठित सम्मान पर्यावरण के क्षेत्र को समर्पित किया गया है। यह पुरस्कार जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा गठित अंतर्राष्ट्रीय समिति (आईपीसीसी) और अमरीका के पूर्व उपराष्ट्रपति अल गोर को संयुक्त रूप से देने की घोषणा की गई है।

नोबेल पुरस्कार की इस घोषणा से साफ है कि जलवायु परिवर्तन, खास कर वैश्विक गर्माहट (ग्लोबल वार्मिंग), में बढ़ोतरी को लेकर दुनिया की चिंता बढ़ती जा रही है। विडंबना यह है कि जिस देश के एक पूर्व उपप्रमुख को यह पुरस्कार देने का ऐलान किया गया है, वही देश वैश्विक तापमान को बढ़ाने में सबसे आगे है। जी हां, यहां बात उसी अमरीका की हो रही है जो विश्व स्तर पर एक चौथाई ग्रीनहाउस गैसों उगलकर ग्लोबल वार्मिंग बढ़ाने में सर्वाधिक 'योगदान' दे रहा है। नीम पर करेला यह कि उसने क्योटो संधि के अनुमोदन से भी इन्कार करके इसकी सफलता पर ही सवालिया निशान लगा दिया है। ग्लोबल वार्मिंग से चिंतित विश्व समुदाय ग्रीनहाउस गैसों के प्रभाव को कम करने के मकसद से इस संधि पर राज़ी हुआ है, लेकिन अमरीका ने अपने 'राष्ट्रहित' के नाम पर इसे पलीता लगाकर मानव जाति के कल्याण की सामूहिक वैश्विक प्रतिबद्धता की भावना को ताक पर रख दिया है।

हम आगे बढ़ें, उससे पहले एक नज़र क्योटो संधि पर डाल लेते हैं। क्योटो प्रोटोकॉल या संधि को लेकर दिसंबर 1997 में जापान के क्योटो शहर में वार्ताओं का क्रम शुरू हुआ था। इसी वजह से इसे 'क्योटो संधि' नाम दिया गया है। नवंबर 2004 में रूस द्वारा अनुमोदन के बाद इसके क्रियान्वयन का रास्ता साफ हो गया। यह 16 फरवरी 2005 से लागू कर दी गई। यह संधि विश्व के औद्योगिक

देशों को छह ग्रीनहाउस गैसों - कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, सल्फर हेक्साफ्लोराइड, एचएफसी और पीएफसी में एक निश्चित सीमा तक कटौती करने को बाध्य करती है। इसके तहत वर्ष 2012 तक ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के स्तर को 1990 के स्तर से 5.2 फीसदी कम करना है। वैसे विशेषज्ञों का मानना है कि यदि वाकई इस लक्ष्य को हासिल कर लिया जाता है तो प्रभावी तौर पर यह कटौती 29 फीसदी तक होगी।

इस प्रकार बढ़ते वैश्विक तापमान के इस दौर में यह संधि पूरी मानव जाति के लिए वरदान साबित हो सकती है, लेकिन अड़ंगा है तो केवल अमरीका का। अमरीका ने इसका अनुमोदन करने से इंकार कर दिया। हालांकि पूर्व डेमोक्रेट राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने इस संधि पर हस्ताक्षर किए थे, लेकिन 2001 में जार्ज डब्ल्यू. बुश के राष्ट्रपति बनने के बाद उन्होंने इसे अनुमोदन के लिए कांग्रेस में पेश नहीं किया। बुश ने संभवतः ऐसा सीनेट में इस तरह की किसी संधि के खिलाफ 95-0 से पारित एक प्रस्ताव के मद्देनज़र किया था। सीनेट का कहना था कि वह ऐसी किसी 'भेदभावपूर्ण' वैश्विक संधि का समर्थन नहीं कर सकती जो केवल औद्योगिक देशों पर ही बंधनकारी हो।

यहां एक सवाल यह उठता रहा है कि नोबेल पुरस्कार विजेता अल गोर अगर राष्ट्रपति होते तो क्या वे अमरीकी संसद को ऐसी संधि के अनुमोदन के लिए मना पाते। वर्ष 2000 के राष्ट्रपति चुनाव में बुश के खिलाफ अल गोर ही डेमोक्रेटिक पार्टी के उम्मीदवार थे और विवादास्पद मतगणना में बहुत ही कम अंतर से पराजित हुए थे।

अल गोर दुनिया के उन चुनिंदा राजनीतिज्ञों में शामिल हैं, जो राजनीति की शतरंज पर मोहरे चलने के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण के प्रति भी सक्रिय रहे हैं। उप राष्ट्रपति के पद पर रहते हुए वर्ष 1994 में उन्होंने पृथ्वी दिवस के दिन विद्यार्थियों में पर्यावरण संरक्षण को लेकर जागृति पैदा

करने के मकसद से 'ग्लोब कार्यक्रम' शुरू किया था। उनकी चिंता के केंद्र में ग्लोबल वार्मिंग सदैव से रहा है। वे जगह-जगह घूमकर इसके खतरों के प्रति अलख जगाते आए हैं। उनके संगठन 'सेव अवरसेल्स' के तत्वावधान में 7 जुलाई 2007 को 'लाइव अर्थ' नाम से संगीत कार्यक्रम का आयोजन किया गया था जिसमें संगीत के क्षेत्र की कई हस्तियों ने भागीदारी की थी। गोर ने क्योटो संधि की भी जोरदार पेरवी की है। लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि अमरीका के अन्य राजनेताओं की सोच उनकी जैसी नहीं है। वे ऐसी किसी भी संधि को मानने को तैयार नहीं हैं जो अमरीका की अर्थव्यवस्था पर विपरीत असर डाले।

सवाल यह है कि क्या अमरीका की भागीदारी के बगैर क्योटो जैसी संधियों की कोई प्रासंगिकता है? दिक्कत यह है कि अमरीका ऐसी संधियों को मानने को बिल्कुल तैयार नहीं है क्योंकि इसमें उसके आर्थिक हित आड़े आते हैं। अमरीका की जैसी नीति रही है, उसके चलते आगे भी उससे कोई विशेष उम्मीद नहीं रखी जा सकती और फिलहाल तो अमरीका की अर्थव्यवस्था डांवाडोल चल रही है, डॉलर न्यूनतम स्तर पर है और 'यूरो' के साथ संघर्षशील है, कच्चे तेल की कीमतें 100 डॉलर प्रति बैरल तक जा पहुंची हैं। ऐसे में अमरीका नहीं चाहेगा कि पर्यावरण संरक्षण के नाम पर उसकी अर्थव्यवस्था को और कोई धक्का लगे।

लेकिन आईपीसीसी की हाल ही में जारी रिपोर्ट के संदर्भ में एक बड़ा सवाल यह भी उठता है कि आखिर अमरीका उस दुनिया में अपनी 'बादशाहत' कायम करके क्या पाना चाहेगा जो शायद अगले कुछ दशकों में रहने लायक भी नहीं बचेगी। आईपीसीसी ने 17 नवंबर को स्पेन के वैलेंशिया में जारी अपनी चौथी और अंतिम रिपोर्ट में कड़ी चेतावनी देते हुए कहा है कि ग्लोबल वार्मिंग के नतीजे इतने भयावह होंगे कि उससे हुए नुकसान की क्षतिपूर्ति नहीं हो पाएगी। इसके दुष्प्रभावों से कोई भी देश नहीं बच पाएगा।

सैकड़ों वैज्ञानिकों व पर्यावरण विशेषज्ञों द्वारा तैयार इस रिपोर्ट की विश्वसनीयता असंदिग्ध है, इस पर कोई सवाल नहीं उठाया जा सकता। शायद खुद अमरीका भी इसके निष्कर्षों से असहमति नहीं जता सकता। इसलिए इस रिपोर्ट

की उपरोक्त चेतावनी से भी वह शायद ही असहमत होगा कि ग्लोबल वार्मिंग के दुष्प्रभावों से कोई भी देश नहीं बच सकता। यह सच है कि गरीब व विकासशील देशों को इसकी ज़्यादा कीमत चुकानी होगी, लेकिन अमरीका जैसे विकसित देश भी इसके प्रभाव से अछूते नहीं रह पाएंगे। आखिर ऐसे किसी कवच का निर्माण तो अब तक अमरीका भी नहीं कर पाया है और न ही कर पाना संभव है कि बाहर पूरी दुनिया जलती रहे और वह कवच के भीतर बैठकर खुद को सुरक्षित महसूस कर सके।

अंत में आईपीसीसी के अध्यक्ष डॉ. आर.के. पचौरी का यह कथन महत्वपूर्ण है जो उन्होंने अंतिम रिपोर्ट जारी करते हुए व्यक्त किया था, "हमें अब उन मूल्यों या नैतिकता की ज़रूरत है जिनमें हर मानव अपनी जीवन प्रणाली व व्यवहार में बदलाव कर उस चुनौती का सामना करने के लिए कसर कस सके जो हमारे सामने पेश आ रही है।" क्या अमरीकी शासक इस पर ध्यान देंगे? आखिर इस दुनिया को तपने से बचाने की ज़िम्मेदारी केवल मथाई, बहुगुणा, पचौरी या अल गोर की ही तो नहीं है! (स्रोत फीचर्स)

वर्ग पहेली 39 का हल

चि	क	न	गु	नि	या		बी	न
लि			ले		हू			प
का	न		ल	त		क	स	ना
	या	न		र		ल		घ
वं		स	दा	ब	हा	र		ट
द		वा		त		व	सा	
ना	सू	र		र	वि		ल	ब
शि			पा		र			टे
वा	यु		व	रा	ह	मि	हि	र